DSSSB TGT & PGT
दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड
ROJGAR WITH ANKIT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
तैतिरियोपनिषद एवं विष्णु पुराण
LIVE
02-09-2024 05:00 PM

तैत्तिरियोपनिषद एवं विष्णु पुराण

ईश - स्तुति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

ॐ - पूर्ण; पूर्णम् - सभी तरह से पूर्ण; अदः वह; पूर्णम् - पूर्ण; इदम् - यह व्यवहार (दृश्य) जगत्; पूर्णात् - पूर्ण से; पूर्णम् - पूर्ण इकाई; उदच्यते - उत्पन्न होता है; पूर्णस्य पूर्ण का; पूर्णम् - पूर्णतः, सब; आदाय - लेने पर; पूर्णम् - पूर्ण संतुलन; एव - ही; अवशिष्यते बचा रहता है।

अनुवाद - भगवान् पूर्ण हैं और चूँकि वे पूरी तरह अखण्ड हैं, अतएव उनके सारे उद्भव, तथा यह व्यवहार जगत्, पूर्ण के रूप में परिपूर्ण हैं। पूर्ण से जो कुछ उत्पन्न होता है वह भी अपने में पूर्ण होता है। चूँकि वे पूर्ण हैं, अतएव उनसे न जाने कितनी पूर्ण इकाइयाँ उद्भूत होती हैं, तो भी वे पूर्ण रहते हैं।

मंत्र – १

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥ १॥

ईश - भगवान्; आवास्यम् - नियन्त्रित; इदम् - यह; सर्वम् - सम्पूर्ण; यत् किञ्च - जो भी; जगत्याम् - ब्रह्माण्ड के भीतर; जगत् - जड़-चेतन सब कुछ; तेन उसके द्वारा; त्यक्तेन - पृथक रखा गया भाग; भुञ्जीथा - तुम्हें स्वीकार करना चाहिए; मा - नहीं; गृधः - प्राप्त करने का प्रयास; कस्य स्विद् - अन्य किसी की; धनम् - सम्पत्ति को।

अनुवाद - इस ब्रह्माण्ड के भीतर की प्रत्येक जड़ और चेतन वस्तु भगवान् द्वारा नियन्त्रित है और उन्हीं की सम्पत्ति है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि अपने लिए केवल उन्हीं वस्तुओं को स्वीकार करे जो आवश्यक हैं और जो उसके भाग के रूप में नियत कर दी गई हैं। मनुष्य को यह जानते हुए कि अन्य वस्तुएँ किसकी हैं, उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहिए।

मंत्र - २

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत् समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २॥

कुर्वन् - निरन्तर करते हुए; एव- इस प्रकार; इह - इस जीवन काल में; कर्माणि - कर्म; जिजीविषेत्- जीने की इच्छा करे; शतम् - एक सौः समाः - वर्ष एवम् - इस तरह रहते हुए; त्वयि - तुमको; न - नहीं; अन्यथा - दूसरा, वैकल्पिक; इतः- इस पथ से; अस्ति - है; न - नहीं; कर्म - कर्म; लिप्यते - बाँधा जा सकता है; नरे- मनुष्य को।

अनुवाद - यदि मनुष्य इस प्रकार निरन्तर कार्य करता रहे तो वह सौ वर्षों तक जीने की इच्छा कर सकता है क्योंकि इस प्रकार का कर्म उसे कर्म के नियम से नहीं बाँधेगा। मनुष्य के लिए इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

मन्त्र-३

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।। ३ ।।

असुर्याः - असुरों के निमित्त; नाम - नाम से प्रसिद्ध; ते-वे; लोकाः- लोक; अन्धेन - अज्ञान से; तमसा - अन्धकार से; आवृताः - ढके हुए; तान् - उन लोकों को; ते - वे; प्रेत्य- मृत्यु के बाद; अभिगच्छन्ति - प्रवेश करते हैं; ये - जो कोई; के- हरएक; च - तथा; आत्महनः - आत्मा का हनन करने वाले; जनाः - व्यक्ति ।

अनुवाद - आत्मा का हनन करने वाला, चाहे वह जो भी हो, उन लोकों में प्रवेश करता है जो अश्रद्धा के जगत् के नाम से विख्यात और अन्धकार तथा अज्ञान से पूर्ण है।

मन्त्र -४

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।। ४ ।।

अनेजत् - स्थिर; एकम् - एक; मनसः मन की अपेक्षा; जवीयः - अधिक तेज; न - नहीं; एनत्- यह परमेश्वर; देवाः - इन्द्र जैसे देवता; आप्नुवन् - पहुँच सकते हैं; पूर्वम् - समक्ष अर्षत्- तेजी से चलते हुए; तत्-वह, धावतः - दौड़ने वालों को; अन्यान्- दूसरे; अत्येति - अतिक्रमण कर जाता है;

तिष्ठत्- एक स्थान पर रहते हुए; तस्मिन् - उसमें; अपः- वर्षा; मातरिश्वा - वायु तथा जल के देवता; दधाति - पूर्ति करते हैं।

अनुवाद - अपने धाम में अचल रहते हुए भी भगवान् मन से अधिक वेगवान हैं और अन्य समस्त धावकों को पछाड़ सकते हैं। शक्तिशाली देवता उन्हें नहीं पा सकते। एक स्थान पर रहकर वे वायु तथा वर्षा की पूर्ति करने वालों को वश में रखते हैं। वे श्रेष्ठता में सबसे आगे हैं।

मन्त्र -५

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

तत् - यह परमेश्वर; एजति - चलता है; तत् - वह; न- नहीं; एजति - चलता है; ; दूरे - काफी दूर; उ - भी; अन्तिके - अत्यन्त निकट; तत् - वह; अन्तः- भीतर; अस्य - इसका; सर्वस्य - सबका; तत् - वह उभी; सर्वस्य - सबका; अस्य- इसका बाह्यतः - बाहर।

अनुवाद - परमेश्वर चलता है और नहीं भी चलता। वह बहुत दूर है लेकिन अत्यन्त निकट भी है। वह सबके भीतर है फिर भी वह सबके बाहर है।

मन्त्र -६

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

यः - जो; तु - लेकिन; सर्वाणि - समस्त भूतानि - जीवों को; आत्मनि - परमेश्वर के सम्बन्ध में; एव - केवल; अनुपश्यति - नियमित ढंग से देखता है; सर्वभूतेषु - समस्त जीवों में; च - तथा; आत्मानम् - परमात्मा को; ततः - तत्पश्चात् न- नहीं; विजुगुप्सते - किसी से घृणा करता है।

अनुवाद - जो प्रत्येक वस्तु को परमेश्वर से सम्बन्धित करके देखता है, जो समस्त जीवों को अपने अंश रूप में देखता है तथा जो परमेश्वर को प्रत्येक वस्तु के भीतर देखता है वह कभी भी किसी वस्तु से या किसी जीव से घृणा नहीं करता।

मन्त्र -७

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।। ७ ।।

यस्मिन् - जिस स्थिति में; सर्वाणि - सभी भूतानि - जीव; आत्मा - आध्यात्मिक स्फुलिंग; एव - केवल; अभूत् - की तरह विद्यमान; विजानतः - जानने वाले का; तत्र - वहाँ पर; कः - क्या; मोहः - मोह; कः क्या; शोकः शोक; एकत्वम् - गुण की एकता; अनुपश्यतः- प्रमाण के माध्यम से देखने वाले का या उस तरह निरन्तर देखने वाले का।

अनुवाद - जो सदैव समस्त जीवों को आध्यात्मिक स्फुलिंग के रूप में मन्त्र-७ ३१ भगवान् के ही समान गुण वाला देखता है वही वस्तुओं का असली ज्ञाता हो जाता है। तो फिर उसके लिए मोह या चिन्ता कैसी?

एकादश अनुवाक

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ।

वेदम् अनूच्य - वेदका भलीभाँति अध्ययन कराकर; आचार्यः - आचार्य; अन्तेवासिनम्-अपने आश्रममें रहनेवाले ब्रह्मचारी विद्यार्थीको; अनुशास्ति - शिक्षा देता है; सत्यम् वद - तुम सत्य बोलो; धर्मम् चर - धर्मका आचरण करो; स्वाध्यायात् - स्वाध्यायसे; मा प्रमदः - कभी न चूको; आचार्याय - आचार्यके लिये; प्रियम् धनम् - दक्षिणाके रूपमें वाञ्छित धन; आहृत्य - लाकर (दो; फिर उनकी आज्ञासे गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करके); प्रजातन्तुम्- संतान-परम्पराको (चालू रखो, उसका); मा व्यवच्छेत्सीः - उच्छेद न करना; सत्यात्- (तुमको) सत्यसे; न प्रमदितव्यम्-कभी नहीं डिगना चाहिये;

धर्मात् - धर्मसे; न-नहीं; प्रमदितव्यम् - डिगना चाहिये; कुशलात्-शुभ कर्मोंसे; न प्रमदितव्यम्-कभी नहीं चूकना चाहिये; भूत्यै- उन्नतिके साधनोंसे; न प्रमदितव्यम् - कभी नहीं चूकना चाहिये; स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम् - वेदोंके पढ़ने और पढ़ानेमें; न प्रमदितव्यम्-कभी भूल नहीं करनी चाहिये; देवपितृकार्याभ्याम् - देवकार्यसे और पितृकार्यसे; न प्रमदितव्यम् कभी नहीं चूकना चाहिये।

व्याख्या- गृहस्थको अपना जीवन कैसा बनाना चाहिये, यह वात समझानेके लिये इस अनुवाकका आरम्भ किया गया है। आचार्य शिष्यको वेदका भलीभाँति अध्ययन कराकर समावर्तन संस्कारके समय गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके गृहस्थ-धर्मका पालन करनेकी शिक्षा देते हैं- पुत्र ! तुम सदा सत्य-भाषण करना, आपत्ति पड़नेपर भी झूठका कदापि आश्रय न लेना, अपने वर्ण-आश्रमके अनुकूल शास्त्र-सम्मत धर्मका अनुष्ठान करना,

स्वाध्यायसे अर्थात् वेदोंके अभ्यास, संध्यावन्दन, गायत्रीजप और भगवन्नाम-गुणकीर्तन आदि नित्यकर्ममें कभी भी प्रमाद न करना- अर्थात् न तो कभी उन्हें अनादरपूर्वक करना और न आलस्यवश उनका त्याग ही करना। गुरुके लिये दक्षिणाके रूपमें उनकी रुचिके अनुरूप धन लाकर प्रेमपूर्वक देना; फिर उनकी आज्ञासे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके स्वधर्मका पालन करते हुए संतान-परम्पराको सुरक्षित रखना-उसका लोप न करना। अर्थात् शास्त्रविधिके अनुसार विवाहित धर्मपत्नीके साथ ऋतुकालमें नियमित सहवास करके संतानोत्पत्तिका कार्य अनासक्तिपूर्वक करना। तुमको कभी भी सत्यसे नहीं

चूकना चाहिये अर्थात् हँसी-दिल्लगी या व्यर्थकी बातोंमें वाणीकी शक्तिको न तो नष्ट करना चाहिये और न परिहास आदिके बहाने कभी झूठ ही बोलना चाहिये। इसी प्रकार धर्मपालनमें भी भूल नहीं करनी चाहिये अर्थात् कोई बहाना बनाकर या आलस्यवश कभी धर्मकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। लौकिक और शास्त्रीय-जितने भी कर्तव्यरूपसे प्राप्त शुभ कर्म हैं, उनका कभी त्याग या उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, अपितु यथायोग्य उनका अनुष्ठान करते रहना चाहिये।

धन-सम्पत्तिको बढ़ानेवाले लौकिक उन्नतिके साधनोंके प्रति भी उदासीन नहीं होना चाहिये। इसके लिये भी वर्णाश्रमानुकूल चेष्टा करनी चाहिये। पढ़ने और पढ़ानेका जो मुख्य नियम है, उसकी कभी अवहेलना या आलस्यपूर्वक त्याग नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार अग्निहोत्र और यज्ञादिके अनुष्ठानरूप देवकार्य तथा श्राद्ध-तर्पण आदि पितृकार्योंके सम्पादनमें भी आलस्य या अवहेलनापूर्वक प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि । यान्यस्माकः सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाः सो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम् ।

मातृदेवः भव-तुम मातामें देवबुद्धि करनेवाले बनो; पितृदेवः भव-पिताको देवरूप समझनेवाले होओ; आचार्यदेवः भव - आचार्यको देवरूप समझनेवाले वनो; अतिथिदेवः भव-अतिथिको देवतुल्य समझनेवाले होओ; यानि - जो-जो; अनवद्यानि - निर्दोष; कर्माणि - कर्म हैं; तानि - उन्हींका; सेवितव्यानि - तुम्हें सेवन करना चाहिये; इतराणि - दूसरे (दोषयुक्त) कर्मोंका; नो-कभी आचरण नहीं करना चाहिये; अस्माकम्-हमारे (आचरणोंमेंसे भी); यानि - जो-जो; सुचरितानि-अच्छे आचरण हैं; तानि - उनका ही; त्वया - तुमको; उपास्यानि - सेवन करना चाहिये; इतराणि-दूसरोंका;

नो-कभी नहीं; ये के च - जो कोई भी; अस्मत्-हमसे; श्रेयांसः- श्रेष्ठ (गुरुजन एवं); ब्राह्मणाः- ब्राह्मण आयें; तेषाम्-उनको; त्वया-तुम्हें; आसनेन-आसन-दान आदिके द्वारा सेवा करके; प्रश्वसितव्यम्-विश्राम देना चाहिये; श्रद्धया देयम्-श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये; अश्रद्धया- विना श्रद्धाके; अदेयम्-नहीं देना चाहिये; श्रिया देयम्-आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये; ह्रिया देयम्-लज्जासे देना चाहिये; भिया देयम् - भयसे भी देना चाहिये (और); संविदा देयम्- (जो कुछ भी दिया जाय, वह सब) विवेकपूर्वक देना चाहिये।

व्याख्या- पुत्र ! तुम मातामें देवबुद्धि रखना, पितामें भी देवबुद्धि रखना, आचार्यमें देवबुद्धि रखना तथा अतिथिमें भी देवबुद्धि रखना। आशय यह कि इन चारोंको ईश्वरकी प्रतिमूर्ति समझकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सदा इनकी आज्ञाका पालन, नमस्कार और सेवा करते रहना; इन्हें सदा अपने विनयपूर्ण व्यवहारसे प्रसन्न रखना। जगत्में जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हींका तुम्हें सेवन करना चाहिये। उनसे भिन्न जो दोषयुक्त-निषिद्ध कर्म हैं, उनका कभी भूलकर-स्वप्नमें भी आचरण नहीं करना चाहिये।

हमारे-अपने गुरुजनोंके आचार-व्यवहारमें भी जो उत्तम-शास्त्र एवं शिष्ट पुरुषोंद्वारा अनुमोदित आचरण हैं, जिनके विषयमें किसी प्रकारकी शङ्काको स्थान नहीं है, उन्हींका तुम्हें अनुकरण करना चाहिये, उन्हींका सेवन करना चाहिये। जिनके विषयमें जरा- सी भी शङ्का हो, उनका अनुकरण कभी नहीं करना चाहिये। जो कोई भी हमसे श्रेष्ठ-वय, विद्या, तप, आचरण आदिमें बड़े तथा ब्राह्मण आदि पूज्य पुरुष घरपर पधारें, उनको पाद्य, अर्घ्य, आसन आदि प्रदान करके सब प्रकारसे उनका सम्मान तथा यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

अपनी शक्तिके अनुसार दान करनेके लिये तुम्हें सदा उदारतापूर्वक तत्पर रहना चाहिये। जो कुछ भी दिया जाय, वह श्रद्धापूर्वक देना चाहिये। अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिये; क्योंकि बिना श्रद्धाके किये हुए दान आदि कर्म असत् माने गये हैं (गीता १७। २७)। लज्जापूर्वक देना चाहिये अर्थात् सारा धन भगवान्का है, मैं यदि इसे अपना मानूँ तो यह अपराध है। इसे सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित भगवान्की सेवायें ही लगाना मेरा कर्तव्य है। मैं जो कुछ दे रहा हूँ, वह भी बहुत कम है। यों सोचकर संकोचका अनुभव करते हुए देना चाहिये।

मनमें दानीपनके अभिमानको नहीं आने देना चाहिये। सर्वत्र और सबमें भगवान् हैं, अतः दान लेनेवाले भी भगवान् ही हैं। उनकी बड़ी कृपा है कि मेरा दिया हुआ स्वीकार कर रहे हैं। यों विचारकर भगवान्से भय मानते हुए दान देना चाहिये। 'हम किसीका उपकार कर रहे हैं' ऐसी भावना मनमें लाकर अभिमान या अविनय नहीं प्रकट करना चाहिये। परंतु जो कुछ दिया जाय वह विवेकपूर्वक, उसके परिणामको समझकर निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर देना चाहिये (गीता १७। २०)। इस प्रकार दिया हुआ दान ही भगवान्‌की प्रीतिका- कल्याणका साधन हो सकता है। वही अक्षय फलका देनेवाला है।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम् ।

अथ - इसके वाद; यदि - यदि; ते - तुमको; कर्मविचिकित्सा - कर्तव्यके निर्णय करनेमें किसी प्रकारकी शङ्का हो; वा-या; वृत्तविचिकित्सा - सदाचारके विषयमें कोई शङ्का; वा - कदाचित्; स्यात् - हो जाय तो; तत्र - वहाँ; ये - जो; सम्मर्शिनः - उत्तम विचारवाले; युक्ताः - परामर्श देनेमें कुशल; आयुक्ताः - कर्म और सदाचारमें पूर्णतया लगे हुए; अलूक्षाः - स्निग्ध स्वभाववाले; (तथा) धर्मकामाः - एकमात्र धर्मके ही अभिलापी; ब्राह्मणाः - ब्राह्मण; स्युः - हों; ते - वे; यथा - जिस प्रकार; तत्र-उस कर्म और आचरणके क्षेत्रमें; वर्तेरन् - बर्ताव करते हों;

तत्र-उस कर्म और आचरण के क्षेत्रमें; **तथा** - वैसे ही; **वर्तेथाः** - तुमको भी बर्ताव करना चाहिये; **अथ** - तथा यदिः **अभ्याख्यातेषु** - किसी दोषसे लाञ्छित मनुष्योंके साथ वर्ताव करनेमें (संदेह उत्पन्न हो जाय, तो भी); **ये** - जो; **तत्र** - वहाँ; **सम्मर्शिनः** - उत्तम विचारवाले; **युक्ताः** - परामर्श देनेमें कुशल; **आयुक्ताः** - सब प्रकारसे यथायोग्य सत्कर्म और सदाचारमें भलीभाँति लगे हुए; **अलूक्षाः** - रूखेपनसे रहित; **धर्मकामाः** - धर्मके अभिलाषी; **ब्राह्मणाः** - (विद्वान्) ब्राह्मण; **स्युः** - हों; **ते** - वे; **यथा** - जिस प्रकार; **तेषु** - उनके साथ; **वर्तेरन्** - बर्ताव करें;

तेषु - उनके साथ; तथा - वैसा ही; वर्तेथाः - तुमको भी बर्ताव करना चाहिये; एषः - आदेशः यह शास्त्रकी आज्ञा है; एषः - उपदेशः यही (गुरुजनोंका अपने शिष्यों और पुत्रोंके लिये) उपदेश है; एषा - यही; वेदोपनिषत् - वेदोंका रहस्य है; च - और; एतत् - यही; अनुशासनम् - परम्परागत शिक्षा है; एवम् - इसी प्रकार; उपासितव्यम्-तुमको अनुष्ठान करना चाहिये; एवम् उ-इसी प्रकार; एतत्-यह; उपास्यम्-अनुष्ठान करना चाहिये।

व्याख्या- 'यह सब करते हुए भी यदि तुमको किसी अवसरपर अपना कर्तव्य निश्चित करनेमें दुविधा उत्पन्न हो जाय, अपनी बुद्धिसे किसी एक निश्चयपर पहुँचना कठिन हो जाय तुम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाओ तो ऐसी स्थितिमें वहाँ जो कोई उत्तम विचार रखनेवाले, उचित परामर्श देनेमें कुशल, सत्कर्म और सदाचारमें तत्परतापूर्वक लगे हुए, सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेवाले तथा एकमात्र धर्मपालनकी ही इच्छा रखनेवाले विद्वान् ब्राह्मण (या अन्य कोई ऐसे ही महापुरुष) हों- वे जिस प्रकार ऐसे प्रसङ्गोंपर आचरण करते हों, उसी प्रकारका आचरण तुम्हें भी करना चाहिये।

ऐसे स्थलोंमें उन्हींके सत्परामर्शके अनुसार उन्हींके स्थापित आदर्शका अनुगमन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य किसी दोषके कारण लाञ्छित हो गया हो, उसके साथ किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिये- इस विषयमें भी यदि तुमको दुविधा प्राप्त हो जाय तुम अपनी बुद्धिसे निर्णय न कर सको तो वहाँ भी जो विचारशील, परामर्श देनेमें कुशल, सत्कर्म और सदाचारमें पूर्णतया संलग्न तथा धर्मकामी (सांसारिक धनादिकी कामनासे रहित) निःस्वार्थी विद्वान् ब्राह्मण हों, वे लोग उसके साथ जैसा व्यवहार करें, वैसा ही तुमको भी करना चाहिये। उनका व्यवहार ही इस विषयमें प्रमाण है।'

'यही शास्त्रकी आज्ञा है- शास्त्रोंका निचोड़ है। यही गुरु एवं माता-पिताका अपने शिष्यों और संतानोंके प्रति उपदेश है तथा यही सम्पूर्ण वेदोंका रहस्य है। इतना ही नहीं, अनुशासन भी यही है। ईश्वरकी आज्ञा तथा परम्परागत उपदेशका नाम अनुशासन है। इसलिये तुमको इसी प्रकार कर्तव्य एवं सदाचारका पालन करना चाहिये। इसी प्रकार कर्तव्य एवं सदाचारका पालन करना चाहिये।' ॥

एकादश अनुवाक समाप्त ॥ ११॥

DSSSB TGT & PGT
दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड
ROJGAR
ANKIT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
तैतिरियोपनिषद एवं विष्णु पुराण
LIVE
01-09-2024 08:15 AM

पुराण (18)

मद्वयं भद्वयं ब्रत्रयं वचतुष्टयम्

अनापलिङ्कूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते ।

मत्स्य	वायु	नारद	स्कन्द
मार्कण्डेय	विष्णु	पद्म	
भविष्य	वराह	लिङ्ग	
भागवत	वामन	गरुण	
ब्रह्म	अग्नि	कूर्म	
ब्रह्माण्ड			
ब्रह्मवैवर्त			

श्रीविष्णुपुराण

(एक संक्षिप्त परिचय)

श्रीविष्णुपुराण (एक सङ्क्षिप्त परिचय)

- विष्णुपुराण वैष्णव दर्शन का आलम्बन है। अर्थात् वैष्णवों का इष्ट पुराण है।

- विष्णुपुराण ही एकमात्र ऐसा पुराण है, जिसमें पुराण के सभी लक्षण घटित होते हैं अर्थात् 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' के प्राचीन स्वरूप की रक्षा इसमें की गयी है ।
- यह पुराण छः खण्डों में विभक्त है। इसके खण्डों को अंश कहते हैं। इस तरह विष्णुपुराण के अंशों की संख्या 6 तथा अध्यायों की संख्या 126 है।
- यद्यपि पुराणों में इसकी श्लोक संख्या 23 या 24 सहस्र (हजार) कही गयी है किन्तु मुद्रित संस्करणों में प्रायः 6 हजार श्लोक ही मिलते हैं।

विष्णुपुराण

अंश (खण्ड)	अध्याय	प्राप्त श्लोक संख्या
6	126	6000

- विष्णुपुराण के प्रवक्ता पराशर तथा श्रोता मैत्रेय हैं।
- इसमें विष्णुपुराण के अवतारो का वर्णन किया गया है।
- प्रथम अंश में सृष्टि का वर्णन, देव-राक्षस - मनु आदि की उत्पत्ति और समुद्र मन्थन के विवरण के अनन्तर भगवान् विष्णुभक्त ध्रुव तथा प्रह्लाद का चरित वर्णित हैं।

- द्वितीय अंश में पृथ्वी, नरक, सूर्य तथा ग्रहों का वर्णन है । इस प्रसंग में भारतवर्ष का, राजा भरत का तथा विष्णु- भक्ति की दृष्टि से सर्वोत्तम दर्शन का भी विवरण है।

- विष्णुपुराण के द्वितीय अंश में ही भारतादि नौ खण्डों का, सात कुल पर्वतों का, ब्राह्मणादि वर्णों का और पर्वतों से निकली नदियों का भी वर्णन है।

तृतीय अंश में मनुओं तथा मन्वन्तरों, व्यास द्वारा वेदों के विभाजन, वेदशाखाओं, वर्णाश्रमों, जन्म और विवाह संस्कारों के अनन्तर जैन-बौद्ध आदि नास्तिकों के उद्भव की कथायें दी गयी हैं।

DSSSB TGT & PGT SCHOLAR BATCH संस्कृत

चतुर्थ अंश में सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजाओं की सूची दी गयी है। इसमें उर्वशी, ययाति, राम तथा महाभारत की कथायें भी हैं।

और अन्त में मगध, शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग आदि वंशों के राजाओं का वर्णन करके कलयुग के बर्बर राजाओं के अनीतिपूर्ण शासन का विनाश करने के लिये कल्कि अवतार की भविष्यवाणी की गयी है।

पञ्चम अंश में हरिवंशानुसार कृष्ण-कथा तथा षष्ठ अंश में चारों युगों का वर्णन करके वैष्णव दर्शन के अनुसार बन्धन तथा मोक्ष का विवेचन है।

विष्णुपुराण की टीकाएँ -

1. चित्सुख मुनि की टीका
(जिसका निर्देश श्रीधरस्वामी ने अपनी टीका में किया है।)
2. जगन्नाथ पाठक- स्वभावार्थदीपिका । (स्वभाषार्थदीपिका)
3. नृसिंहभट्टकृत टीका |
4. रत्नगर्भ - वैष्णवाकूतचन्द्रिका |
5. विष्णुचित्त कृत विष्णुचित्ती ।
6. श्रीधरस्वामी - आत्मप्रकाश या स्वप्रकाश नामक व्याख्यान ।

- इन टीकाओं में सबसे अधिक प्रख्यात है- श्रीधरस्वामी की 'आत्मप्रकाश' या 'स्वप्रकाश' नामक टीका। यह टीका न अधिक विस्तृत है और न अतिलघु । टीकाकार के अनुसार यह टीका 'मध्यमा' है।

श्रीमद्विष्णुपुराणस्य व्याख्यां स्वल्पातिविस्तराम् ।
प्राचामालोक्य तद्व्याख्या मध्यमेयं विधीयते ॥ (तृतीय म. श्लो.)

③ - रणनीति

㉕ - Best
|
संस्कृत

- तृतीय अंश में मनुओं तथा मन्वन्तरों, व्यास द्वारा वेदों के विभाजन, वेदशाखाओं, वर्णाश्रमों, जन्म और विवाह संस्कारों के अनन्तर जैन-बौद्ध आदि नास्तिकों के उद्भव की कथायें दी गयी हैं।
- चतुर्थ अंश में सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजाओं की सूची दी गयी है। इसमें उर्वशी, ययाति, राम तथा महाभारत की कथायें भी हैं।
- और अन्त में मगध, शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग आदि वंशों के राजाओं का वर्णन करके कलयुग के बर्बर राजाओं के अनीतिपूर्ण शासन का विनाश करने के लिये कल्कि अवतार की भविष्यवाणी की गयी है।

- पञ्चम अंश में हरिवंशानुसार कृष्ण-कथा तथा षष्ठ अंश में चारों युगों का वर्णन करके वैष्णव दर्शन के अनुसार बन्धन तथा मोक्ष का विवेचन है।

विष्णुपुराण की टीकाएँ -

1. चित्सुख मुनि की टीका
(जिसका निर्देश श्रीधरस्वामी ने अपनी टीका में किया है।)
2. जगन्नाथ पाठक- स्वभावार्थदीपिका । (स्वभाषार्थदीपिका)
3. नृसिंहभट्टकृत टीका ।
4. रत्नगर्भ - वैष्णवाकूतचन्द्रिका |
5. विष्णुचित्त कृत विष्णुचित्ती ।
6. श्रीधरस्वामी - आत्मप्रकाश या स्वप्रकाश नामक व्याख्यान ।

- इन टीकाओं में सबसे अधिक प्रख्यात है- श्रीधरस्वामी की आत्मप्रकाश' या 'स्वप्रकाश' नामक टीका। यह टीका न अधिक विस्तृत है और न अतिलघु । टीकाकार के अनुसार यह टीका 'मध्यमा' है।

श्रीमद्विष्णुपुराणस्य व्याख्यां स्वल्पातिविस्तराम् ।
प्राचामालोक्य तद्व्याख्या मध्यमेयं विधीयते ॥ (तृतीय म. श्लो.)